हिंदी चलचित्र एवं महिला शक्तिकरण

28

डॉ. मंजुलता*

सन् 1895 का यह क्षण कितना रोमांचक तथा आहलादकारी रहा होगा जब ल्यूमिर बन्धुओं की शोध के परिणामस्वरूप कला तथा तकनीक के समन्वय से किसी छायाचित्र ने चलना–फिरना प्रारम्भ किया होगा। आज केवल इसकी कल्पना ही की सकती है। विज्ञान के इस अनूठे आविष्कार के फलस्वरूप निर्जीव चित्रों को गतिमान होते देखकर कुछ दर्शकों ने किसी भूत कल्पना की होगी, तो कुछ दर्शकों ने इस शोध को मनुष्य को मिलने वाले ईश्वरीय वरदान का रूप माना होगा। वास्तव में यह कोई छोटी घटना नहीं रही होगी। निःसन्देह इसने एक तहलका मचाया होगा और ना जाने कितने लोगों के मनों में इस आविष्कार के भविष्य तथा इसके महत्व को लेकर कल्पनायें और चचयि हुई होंगी।

अपने जन्म के साथ ही सिनेमा जनसंचार का एक प्रभावशाली माध्यम बन गया। बाल्टर एटम ने 1909 ने लिखा है। कि किसी भी रविवार को केवल न्यूयार्क शहर में पाँच लाख से अधिक लोग सिनेमा देखते थे 1908 में न्यूयार्क में प्रतिदिन सिनेमा देखने वालों की संख्या 4 लाख से अधिक हो जाती थी। राबर्ट ऐलन तथा डगलस गौमरी (1950) ने 1910 में अमेरिका में सिने–दर्शकों की संख्या देते हुए यह स्पष्ट किया कि वहाँ प्रतिदिन 50 लाख दर्शक सिनेमा देखते थे और इस प्रकार एक वर्ष में सिने दर्शकों की संख्या कई करोड़ों में पहुँच जाती थी। जैसे–जैसे सिनेमा को जनसंचार के रूप में मान्यता मिलती गई वैसे–वैसे इसकी तकनीकी परिष्कृत होती चली गई। इस कृतकों के लिता का मोहलाज भी अधिक सावन होता चला गया। आज दुरसंचार की तकनीकी टेलीविजन सिनेमा को घर–घर पहुंचा चुका है। मौरले डेविड (1992) ने के जनसंचार माध्यान बनने से पूर्व सिनेमा के संदर्भ में लिखा था कि सिनेमा जाने तथा सिनेमा देखने में बहुत अन्तर है। सिनेमा जाने में एक तनाव मुक्ति आनन्द की अनुभूति एवं लेना शामिल है। छविगृह का नाम ही हमें एक नये अनुभव का अहसान देता है और दुनिया के सभी देशों से मनोरंजन के अपने–अपने सांस्कृतिक तत्व सिनट एवं पिताकर सिनेमा में समाहित हो गये। आज यह लोगों की संस्कृति तथा आदत का एक हिस्सा बन चुके है। दूरदर्शन की व्यापकता ने जहाँ सिनेमा ने इन अ को योड़ा–सा बदता है, वहीं सिनेमा के भावों को और अधिक व्यापक भी बना दिया है।

बीसवीं शताब्दी के महानतम सांस्कृतिक आविष्कारों में चलचित्र एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। सभी संस्कृतियों ने इसे मनोरंजन के एक सशक्त उपकरण के रूप में अपनाया है, जबकि इसके माध्यम से दर्शायी जा रही विषय वस्तु का स्वरूप अभी तक सांस्कृतिक सापेक्ष ही रहा है। चलचित्र संचार के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित हो चुके हैं। उन सुखद क्षणों में जब किसी छायाचित्र ने चलना–फिरना तथा बाद में बोलना प्रारम्भ किया तो बहुत से

*एसोसिऐट प्रोफेसर, आर०जी० पी०जी० कॉलेज, मेरठ

चलचित्र निर्माताओं ने यह कलाना की कि वे छविग्रहों के अन्धेरेमय वातावरण में अपनी कृतियों के माध्यम से दर्शकों की आत्मा को झकझोर कर उनमें नवीन चेतना व संवेदना का विकास करने में सफल होंगे जिससे नवीन सामाजिक संरचना प्रस्फुटित होंगी। ''(वर्ल्ड कमीशन ऑन कल्चर एण्ड डवलपमेन्ट 1995) अर्थात् चलचित्रों के निर्माण के प्रारम्भिक क्षणों से ही यह आशा की गयी कि चलचित्र मनोरंजन के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन का सश्शक्त माध्यम भी होंगे। किन्तु इसकी उत्पत्ति की लगभग एक शताब्दी के पश्चात भी चलचित्रों के सामाजिक प्रभावों एवं परिवर्तन के माध्यम के रूप में इसकी उपादेयता पर भाास्त्रीय ज्ञान अत्यधिक सीमित है। (होलोज जौएनी एण्ड जैन्कोविच : 1995)

चलचित्रों के सामाजिक प्रभाव क्या है? क्या चलचित्र समाज को प्रतिविम्बित करते हैं अथवा ये स्वयं समाज की रचना को कोई वांछित स्वरूप देते हैं? ये समाज के उत्पाद हैं अथवा नियामक? चलचित्र एक सामान्य व्यक्ति के जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? क्या चलचित्र ''मुक्ति'' की प्रक्रिया को गति देते हैं अथवा समाज को संरचनात्मक ''दासता की ओर ले जाते हैं (पॉल फ्रेरेर. 1972) आदि प्रश्नों का उत्तर इस तथ्य में अन्तर्निहित हैं कि एक सम्प्रेषण माध्यम के रूप में चलचित्र किसके द्वारा नियन्त्रित हैं और कब, किसे क्या और क्यों सम्प्रेषित करते हैं। ये प्रश्न एक और सामाजिक राजनैतिक शक्ति सम्बन्धों एवं संवेदनाओं से ग्रस्त हैं तो दूसरी ओर राष्ट्रों की संचार नीति एवं सॅन्सर बोर्ड के विचार बिन्दु भी हैं। इन प्रश्नों के सन्दर्भ में चलचित्र को ''विचार धारात्मक राजकीय यंत्र के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है (लिविस अल्पसर : 1972)।

चलचित्रों के विषय में उक्त सोच के सन्दर्भ में नारीवाद आन्दोलनों में सम्प्रेषण माध्यमों पर सर्वव्यापी पुरूष नियन्त्रण प्रायः चिन्ता तथा आन्दोलन का मुद्दा भी बने हैं। यह अनुभवजनित है कि प्रायः सम्पूर्ण विश्व में चलचित्र माध्यम के नियन्त्रक पुरूष है। अतः नारीवादियों ने यह आरोपित किया है कि चलचित्र को पुरूषों द्वारा अपने स्थापित वर्चस्व को दष्ढ़ करने हेतु स्त्रियों को मानसिक दासत्व की और धकेलने के साधन प्ररूप में प्रयोग किया जा रहा है। यह स्त्रियों से पुरूषों द्वारा अपेक्षित आदर्शों की उनके वस्तुकरण तथा पुरूषों की यौनतुष्टि के साधन के रूप में आत्मसात् करवाने का कुटिल साधन है (संयुक्त राष्ट्र की स्त्रियों पर अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी की रिपोर्ट)। चलचित्रों के प्रति इस प्रकार की धारणाओं पर सन् 1995 में बीजिंग में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित महिलाओं की अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में एकमत सहमति प्रकट की गयी। इस संगोष्ठी के पैरा एक सूची क्रम 234 से 245 में सदस्य राष्ट्रों से यह मांग की गयी है कि वे अपने राष्ट्रों में इस प्रकार की नीति का निर्धारण करेंगे जिससे महिलाओं को गैर परम्परावादी आदेशों के स्थान पर प्रगतिशील आदर्श के रूप में प्रस्तुत करें ताकि जनसंचार माध्यम मुख्यतः चलचित्र महिला सशक्तिकरण का माध्यम बने। (उछत संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम, ह्यूमन डवलपमेन्ट रिपोर्ट 1997) किन्तु क्या चलचित्र स्त्रियों की स्थिति को किसी भी रूप में प्रभावित करते हैं? इस प्रश्न का ठोस प्रकरणों के आधार पर उत्तर महिला आन्दोलनकारियों तथा वैचारिकीय निरूपण करने वालों को सैद्धान्तिक स्पष्टता देने में मदद करेगा।

चलचित्र से जुड़े उक्त प्रश्न न केवल मनुष्य के खोजात्मक स्वभाव की उपज है अपितु चलचित्रों पर शात्रीय शोध के सैद्धान्तिक आधार स्त्री हैं। इन प्रश्नों को विभिन्न दृष्टिकोणों से यथा मनोविश्लेषणवाद मार्क्सवाद, संरचनावाद, उत्तरसंरचनावाद से उत्तरित करने के प्रयास किय है किन्तु इनके दार्शनिक विवादों को अनुभवात्मक तथ्यों के आधार पर रखने के प्रयास बहुत कम हुए हैं। वस्तुतः यद्यपि आज चलचित्र सम्पूर्ण विश्व में मनोरंजन के सांस्कृतिक तत्व के रूप में अंगीकृत किया जा चुका है एवं चलचित्र निर्माण विश्व में अरबों रूपयों के उद्योग के रूप में स्थापित हो चुका है तथापि शैक्षणिक जगत में अध्ययन विषय के रूप में मान्यता मिलना एक नवीन घटना है (राबर्ट एलन एवं डगलस गोमरी 1985)।

भारत में चलचित्र किस प्रकार सामाजिक–सांस्कषति जीवनचर्या में अंगीकष्त हो चुके हैं उसका अनुमान लगाना कठिन कार्य नहीं है। महमूद जमाल का लघु चित्र ''पिकॉक स्क्रीन'' तथा भारत के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की रिपोर्ट मास मीडिया इन इण्डिया (1992) में बताया गया कि भारत में प्रतिदिन औसतन 25 चलचित्र बनते हैं जिन्हें 1.5 करोड़ व्यक्ति देश के 130002 छविगष्हों में प्रतिदिन देखते हैं। इन तथ्यों की पुष्टि राज्याध्यक्ष तथा विलिमैन (1994) ने भी की है। भारत इस सांस्कषतिक व आर्थिक संस्था का अध्ययन एक नयी शुरूवात है। 1972 में भारत की समाज विज्ञान शोध परिषद् ने समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानव शास्त्र में शोध कार्यों का प्रथम सर्वेक्षण करवाया था जिसमें संचार के समाजशास्त्र को कोई स्थान नहीं दिया गया था। किन्तु 1985–86 में इसी संस्था द्वारा करवाए गए सर्वेक्षण में संचार के समाजशास्त्र में हुए शोध कार्यों का लेखा–जोखा सुरेन्द्र गुप्ता ने प्रस्तुत किया था इस साहित्यावोकन में सुरेन्द्र गुप्ता ने चलचित्रों के अध्ययन को प्राथमिकता के आधार पर अध्ययन करने पर बल दिया था। भारत में चलचित्रों पर शास्त्रीय शोध करने वालों में आशीश नन्दी (1981, 87–88, 1997), रोजी टॉमस (1985, 87–89 95). वासुदेव (1986, 1995) दिशानयक (1988, 1992 1993) वासुदेवन (1989, 1991, 1995), बिन फोर्ड (1989), दास गुप्ता (1991), आरनॉल्ड (1991). सारा डीकी (1993). प्रसाद (1994). राज्याध्यक्ष एवं विलमैन (1994), तथा चक्रवति (1996) प्रमुख अध्ययन है। इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि भारत के पैक्षणिक जगत में चलचित्रों के अध्ययन अपना स्थान बना रहे हैं।

भारत में राष्ट्रीय महिला आयोग में 1947 में अपनी शोध भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति में स्वीकार किया कि स्त्रियों पर चलचित्रों के प्रभावों को समझने के लिए इनके तथ्यात्मक अध्ययन आवश्यक है। इस शोध में यह राय दी गयी है कि चलचित्रों के वस्तुपरक विश्लेषण तीन बिन्दुओं पर केन्द्रित होने चाहिए। प्रथम चलचित्रों को विषय वस्तु का विश्लेषण और उसमें स्त्री का प्रस्तुतिकरण, द्वितीय चलचित्रों का दर्शकों पर प्रभाव तथा चलचित्रों की सामाजिक स्थिति पर प्रभाव।

भारत में चलचित्रों के शास्त्रीय साहित्य का अवलोकन उपरोक्त तीन खण्डों में बांटकर किया जा सकता है। भारत में चलचित्रों के जो अध्ययन हुए हैं उनमें प्रायः चलचित्रों की विषय वस्तु के विश्लेषण ही किये गये हैं। इन अध्ययनों में भारत में हिन्दी भाषी चलचित्रों की विषय वस्तु को ऐतिहासिक परिवेश में देखा गया है तथा चलचित्र निर्माण के इतिहास के अलग–अलग काल खण्डों में अलग–अलग प्रभावी धाराओं को तलाशने का प्रयास हुआ है।

चलचित्रों के नारीवादी सिद्धान्त के सासरे चरण में यह अनुसत किया गया कि दर्शक को विशेषकर स्त्री दर्शकों को अनदेखा करके चलचित्रों पर बहस नहीं की जा सकती है। इस सोच के परिणामस्वरूप स्त्री के प्रदर्शन का प्रश्न एक बार पुनः दर्शक को वर्गगत स्थिति तथा शक्ति सम्बन्धों के साथ जुड़ गया और नारीवादी चिन्तकों में चलचित्रों में स्त्री के शक्तिकरण के प्रश्न के साथ जोड़कर देखना प्रारम्भ कर दिया।

भारत में नारीवाद दर्षष्टिकोण से चलचित्रों का अध्ययन करने वाले विद्वानों में प्रमुख नाम हैं – चन्द्रा (1973), प्राणजपे (1988), राव (1989, 1995), घोष (1992), जोसफ व शर्मा (1994), रिचर्ड (1995), सरकार (1995), सुब्रहमण्यम् (1996) व गोपालन (1997)। इन विद्वानों ने हिन्दी चलचित्रों में स्त्री पात्रों के प्रस्तुतीकरण के अध्ययन किये है। 1960 से चलने वाले नारी सशक्तिकरण आन्दोलनों में यह माना कि हिन्दी चलचित्रों में स्त्री को जिस रूप में प्रस्तुत किया जाता है वह उसके जीवन की वास्तविकता को प्रदर्शित नहीं करता है और न ही स्त्रियां उस प्रस्तुतीकरण के अनुरूप स्वयं को प्रस्तुत करना चाहती हैं। इनका मानना है कि चलचित्रों को उनके निर्माता शुद्ध आर्थिक लाभ के लिये बनाते हैं और इसके अतिरिक्त उनका कोई सामाजिक सरोकार नहीं होता है। इसके दूरगामी प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर पड़ते हैं। भारत में आर्थिक लाभ के लिये चलचित्रों को बनाते हुए पुरूष दर्शकों को ही ग्राहक के रूप में देखा जाता है। अतः पुरूष नारी से अपने सम्बन्धों में जिन काल्पनिक सम्बन्धों की छवि रखते है उसे ही चलचित्रों में चित्रित कर उन्हें आनन्दित किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप स्त्री का वस्तुकरण व यौन आनन्द की वस्तु के रूप में प्रस्तुतीकरण होता है। उपरोक्त विद्वानों ने स्त्री तथा चलचित्र के उक्त सम्बन्धों को तार्किक दर्षष्टिकोण से ही प्रस्तुत किय है, इनके विश्लेषण अनुभावात्मक शोध पर आधारित नहीं है।

नारी सशक्तिकरण एक अवधारणा है जो सम्पूर्ण विश्व में स्त्री पुरूष की गैर बराबरी तथा शोषण के अहसास से उपजे नारी–आन्दोलनों में विकसित हुई है। जकार्ता घोषणा पत्र में कहा गया कि, ''दुनियाँ की जनसंख्या में पचास प्रतिशत स्त्रियाँ हैं, जो विश्व की श्रमशक्ति का तीस प्रतिशत अंश है तथा वे कुल कार्य घण्टों में 60 प्रतिशत कार्य करती हैं, उन्हें विश्व की कुल आय का मात्र 10 प्रतिशत अंश ही मिलता है और ये विश्व की कुल सम्पत्ति के एक प्रतिशत से कम अंश की स्वामी है।'' ग्रामीण महिलाओं की स्थिति इससे भी भयंकर है। वे अशिक्षित एवं अस्वस्थ है। उनके सामाजिक सहवास पर कठोर प्रतिबंध है। उनके प्रति पारिवारिक हिंसा एक निरन्तर चलने वाली वास्तविकता है। स्त्रियों की इन स्थितियों के प्रतिरोध ा में पूरी दुनियाँ में नारी आन्दोलन प्रारम्भ हुए। प्रारम्भिक वर्षों में ये आन्दोलन बिखरे–बिखरे एवं छितरे–छितरे रहे। स्त्रियाँ स्वयं निर्धारित नहीं कर पाई कि उन्हें क्या प्राप्त करना है। ऐसे में बहुत सी स्त्रियों ने अपनी दशाओं को समझने, उन्हें सुधारने एवं पुरूष वर्चस्व से बचने के लिये रणनीतियाँ खोजने का कार्य किया। 1985 में स्त्रियाँ पुरूष वर्चस्व को तोड़ने की रणनीति बनाने और उसे सर्वसम्मति से स्वीकार करने में सफल हुई। इस रणनीति के अनुसार ही नारी सशक्तिकरण की धारणा विकसित हुई।

कमला भसीन (1992) का कहना है कि स्त्रियों के प्रति गर्भ में चिता तक भेदभाव व्याप्त है। स्त्रियों के लिये राष्ट्रीय योजना (1988 से 2012)का निर्माण करते हुए यह अनुभव किया गया कि स्त्री के प्रति असमानता का भाव–आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य सुविधाओं, आहार एवं वैधानिक सभी और व्याप्त है। जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्री शोषित है, अतः हर प्रकार के शक्ति सम्पन्न करने की आवश्यकता है।

नारीवादी विदुषियों ने नारी सशक्तिकरण से होने वाली बहुत–सी उपलब्धियों की चर्चावि की है। मार्क्स (1977), फोनर कोजर (1978) तथा सैण्डे (1981) का मानना है कि नारी सशक्तिकरण के फलस्वरूप स्त्रियाँ अपनी जीवनचर्या में आवश्यक बदलाव जा सकती है। स्त्रियों की पुरूषों के साथ अन्तः क्रिया का सामाजिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है, इस अन्तः क्रिया में यदि स्त्रियाँ अधिक लाभदायक स्थिति में आती है तो परिणामस्वरूप सम्पूर्ण मानव समाज के लिये सामाजिक संरचना भी अधिक सुखद हो जाती है।

नारी सशक्तिकरण सामाजिक परिवर्तन की गहन प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में ऐसी परिस्थितियाँ विकसित होती हैं जिनमें स्त्रियों के संयुक्त रूप से कल्याण की व्यवस्थाएं पैदा हों। सुषमा सहाय (1998) ने नारी सशक्तिकरण के अनेक विद्वानों की परिभाषाओं के सार रूप में माना कि नारी सशक्तिकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जो स्त्रियों के दमन को नकारती है। यदि स्त्रियाँ अपने निर्णय एवं क्रियायें स्वयं निर्धारित करती हैं जो उनका परम्परागत स्तर निम्न बना रहेगा। स्त्री के सशक्तिकरण होने के निर्णय से ही नारी सशक्तिकरण की तष्णमूल राजनैतिक क्रियाशीलता उदय हुई है। इसके परिणामस्वरूप स्त्रियों अपने समुदाय एवं सामाजिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय भूमिका निर्वाह करने लगी है। नारी सशक्तिकरण समाज में अधिक समता तथा मानसिकता का पर्यायवाची है। यह किसी एक के करने से नही होता है इसके लिये नर–नारी दोनों को परस्पर सहयोग करना पड़ता है। नारी सशक्तिकरण स्वयं मानवीय स्वतन्त्रता तथा समता का मूल आधार है। प्रारम्भ में नारी को पुरूषवादी शक्ति संरचना के ढाँचे को तोड़ना पड़ेगा तथा अपने अधिकारों की स्थापना करनी पड़ेगी तभी समता पर आधारित नई व्यवस्था जन्म लेगी। नारी सशक्तिकरण समाज में नये शक्ति सम्बन्धों को जन्म देता है। यह प्रक्रिया स्त्री–पुरूष सहयोग की स्थापना करती है और पुरूष सत्ता की प्रतियोगिता को समाप्त करती है।

हिन्दी चलचित्र एवं नारी सशक्तिकरण हेतु सामाजिक दशाओं का निर्माण

हिन्दी चलचित्रों द्वारा नारी सशक्तिकरण हेतु सामाजिक दशाओं के निर्माण में क्या और किस प्रकार का योगदान दिया जा रहा है? इस प्रश्न के सन्दर्भ में अध्ययन के उत्तरदाताओं के अनुमान को आँकनें के लिये चलचित्रों में योगदान के चार सम्भावित क्षेत्रों की चर्चा की गयी। ये क्षेत्र है– चेतना एवं ज्ञान में वषद्धि, स्त्री की महत्ता में वषद्धि, स्त्री के प्रति पुरूषों के व्यवहार में अन्तर तथा परम्परा एवं धर्म की महत्ता में कमी सुषमा सहाय (1998), ने नारी सशक्तिकरण की सफलता के लिये उक्त दशाओं को आवश्यक परिस्थितियों माना है। यहाँ यह स्पष्ट करना समाचीन होगा कि उक्त परिस्थितियाँ जहाँ नारी सशक्तिकरण का कारक है

वहीं से इस प्रक्रिया का परिणाम भी है। इन परिस्थितियाँ के निर्माण में चलचित्रों की भूमिका का आंकलन करने के लिये उत्तरदाताओं से सिनेमा के योगदान के सन्दर्भ में सहमति अथवा असहमति को जाना गया।

नारी सशक्तिकरण की आवश्यक दशा नारी चेतना एवं स्त्री शिक्षा में वर्षद्धि है। इसके अभाव में स्त्री न तो अपनी महत्ता को स्वयं ही पहचान पाती है और न ही किसी व्यवसाय का प्रशिक्षण प्राप्त कर पाती है। शंकर (1996) का मानना है कि स्त्री विकास में उसकी निरक्षरता सबसे बड़ी बाधा है। इससे अंधविश्वासों की पकड़ मजबूत होती है। आर्थिक विकास का पहिया रूक जाता है और प्रजातांत्रिक व्यवस्था में भागीदारी अर्थहीन हो जाती है। साक्षरता किसी कानून के माध्यम से नहीं फैलाई जा सकती है इसके लिये व्यक्ति को अपने अन्दर से ही स्वयं प्रवष्त होना आवश्यक है। क्या हिन्दी चलचित्र इसके लिये किसी प्रकार का प्रेरक अथवा उद्दिपक बन पाये हैं।

हिन्दी चलचित्रों ने दर्शकों को परम्परागत रस्में, त्यौहार और पूजप विधियाँ सिखायी हैं। इन्हें सिखाते हुए प्रायः उच्च जातियों की जीवन पद्धति तथा स्त्रियों के व्यवहार से जुड़ी परम्पराओं को विस्तष्त रूप से दिखाया गया है, अर्थात् चलचित्र धार्मिकता प्रचार–प्रसार करते हैं। धार्मिक मान्यतायें स्त्रियों को पुरूष सत्ता के चंगुल से बाहर निकालने से रोकती है। परम्परा तथा आधुनिकता के सन्दर्भ में प्रायः चलचित्रों ने आधुनिक स्त्री को स्वच्छन्द तथा अनैतिक स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी चलचित्र स्त्री–दर्शकों को उनकी परम्परागत भूमिकाओं से जोड़ते हैं जो नारी सशक्तिकरण के मार्ग में अवरोधक हैं। वर्तमान सन्दर्भों में चलचित्रों में स्त्री जीवन की बनावटी समस्यायें तथा बनावटी समाधान प्रस्तुत किये जाते हैं। चलचित्रों में समुदायगत समस्याओं के समाधान प्रस्तुत नहीं किये जाते।

नारी सशक्तिकरण के लिये यह आवश्यक है कि नारीवादी समाज के निर्माण में पुरूष भी सहयोग करें। इस सन्दर्भ में हिन्दी चलचित्र स्त्रियों के प्रति अपराधों में कमी लाने में असफल रहे हैं। इन चलचित्रों में हिंसा का तांडव देखकर स्त्रियों के मन में भय की मनोवर्षत्ति बन गई है। वे सदैव किसी अज्ञात भय से ग्रसित रहती हैं। प्रायः सभी धर्मों ने स्त्रियों को पुरूषों के समक्ष समप्रण अथवा उनके दासत्व को ग्रहण करने की प्रेरणा दी है। हिन्दी सिनेमा ऐसी धाराणाओं को बल देते रहे हैं।

हिन्दी चलचित्रों ने स्त्रियों को अपनी रूप सज्जा, शरीर के आकार तथा पहनावे के प्रति चेतन किया है। प्रायः स्त्रिया अपनी पसन्द की सिने नायिका का अनुसरण करने लगी हैं। स्त्रियों ने अपने तन प्रदर्शन के नैतिक नियम भी शिथिल किये हैं और वह इस बात में आनन्दित तथा गौरवान्वित भी होने लगी हैं। स्त्रियों की इस प्रकार की चेतना को सशक्तिकरण के लिये बनात्मक माना जाये अथवा नहीं यह विवादित है। यदि स्त्री पुरूष की यौन तुष्टि का साधन बनने में गौरवान्वित होती है तो चलचित्रों ने उसे दासता में अधिक जकड़ा है। दूसरी ओर यह भी माना गया है कि यदि स्त्रियाँ अपने यौन–सुख के प्रति अधिक चेतना हुई हैं तो इसे सशक्तिकरण की दिशा में एक सार्थक प्रयास कहा जाना चाहिये। चलचित्रों के प्रभाव से स्त्रियों

ने पुरूषों के साथ अपने शारीरिक सम्पकों की सीमाओं एवं उनके सार्वजनिक प्रदर्शन को स्वतः निर्धारित करना प्रारम्भ किया है। स्त्रियों ने पुरूषों के साथ रिश्तों में सम्पकों के जो दायरे स्वयं निर्धारित किए थे उन्हें बदलना प्रारम्भ किया है। हिन्दी चलचित्रों के दर्शक यह मानने लगे हैं कि सिनेमा ने स्त्रियों में अपने तन के स्वामित्व का भाव जागृत किया है। अपने शारीरिक दायरों का अतिक्रमण करने वालों से वह प्रतिरोध लेने को तैयार होने लगी है। स्त्री इस भाव से मुक्त होने लगी है कि बलात्कार से वह पतिति हुई है। स्त्रियों का अपने विवाह, यौन सम्बन्ध, सन्तानोत्पत्ति, परिवार नियोजन आदि से सम्बन्धित निर्णय स्वयं लेने की प्रक्रिया पर चलचित्रों का कोई प्रभाव नहीं माना जा रहा हैं।

हिन्दी चलचित्रों ने स्त्रियों में आर्थिक स्वतन्त्रता का भाव जागष्त करने में कोई योगदान नहीं दिया है। किसी भी हिन्दी चलचित्रों में स्त्रियों को अपने पिता अथवा पति की सम्पत्ति में अधिकारों के लिये दावा करते हुए नहीं दिखाया है। चलचित्रों के कथानकों में आर्थिक अधिकारों से सम्पन्न स्त्री को स्थान नहीं दिया गया है। नारीवादी दर्षष्टिकोण से इसे पुरूषों द्वारा सम्पत्ति पर एकाधिकार बनाये रखने का षड्यंत्र कहा जा रहा है।

हिन्दी चलचित्रों स्त्रियों में अहम् भाव को जागरूक कर दिया है तथा स्त्रियों के सम्मान के दायरों को विस्तष्त किया है। चलचित्रों के प्रभाव से स्त्रियाँ पुरूषों के उन व्यवहारों के प्रति जागरूक हो गई है जो स्त्री के आत्म–सम्मान को चोट पहुंचाते थे। ऐसे के प्रति जब केवल रोष ही व्यक्त नहीं करती अपितु उनमें निरादर का प्रतिशोध लेने की इच्छा एवं क्षमता भी आने लगी है।

हिन्दी चलचित्रों ने स्त्रियों की सामाजिक भूमिका में बदलाव लाने की दिशा में जो योगदान दिये उन्हें चार बिन्दुओं पर समझने का प्रयास किया गया है। ये है स्त्रियों की यौनिकता पर नियंत्रण, स्त्री की स्वतंत्रता के दायरों की सीमायें, परिवार के शक्ति–संतुलन में स्त्री का स्थान तथा सामूहिक हित के निर्णय लेने में स्त्री की भागीदारी।

हिन्दी चलचित्रों से प्रभावित होकर आज की युवा स्त्रियाँ अपने यौन भावों को अभिव्यक्त करना सीख गई है। अब ये पितष्सत्ता के नियंत्रण को अस्वीकार करती है। परिवारों में चौपी हुई बातों को नकारने लगी है। वह को कैसा जीवन जीना है यह सिनेमा ने उसे भली–भांति सिखा दिया है लेकिन सिनेमा से स्त्रियों के सामाजिक सहवास के दायरे में कोई अन्तर नहीं आया है। सिनेमा के प्रभावों से पारिवारिक हिंसा में वर्षद्धि हुई है और पुरूषों द्वारा की जाने वाली स्त्री के प्रति हिंसा को चलचित्रों ने सामाजिक वैद्यता भी दी है। हिन्दी चलचित्रों में स्त्री निर्णायक भूमिकाओं में नहीं रही है। यहाँ तक की चलचित्रों की एकल माँ भी परिवार केक निर्णय लेने के लिये अन्य पुरूषों पर निर्भर दिखायी गई है। हिन्दी चलचित्र स्त्रियों की सामाजिक–सांस्कषतिक भूमिकाओं के स्थान पर नई भूमिकाओं को विकसित करने अथवा स्थापित करने में सीमित योगदान ही दे पाये हैं।

हिन्दी चलचित्र तथा नारी के सन्दर्भ में शोध का एक व्यापक क्षेत्र खुला हुआ है। सिनेमा के समाजशास्त्र में प्रस्तुत अध्ययन एक प्रारम्भिक बिन्दू मात्र है। हिन्दी सिनेमा के

सन्दर्भ में अभी सिद्धान्त निर्माण की स्थिति नहीं आई है। अभी चलचित्रों में स्त्री के विविध पक्षों के प्रस्तुतीकरण दर्शकों की रुचियों एवं उन पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में तथ्य संकलन किया जाना अनिवार्य है, ताकि इस दिशा में सिद्धान्त निर्माण हो सके। तथ्य संकलन के लिये एक सुनियोजित पद्धति विकसित करना भी अभी शेष है। आशा है प्रस्तुत अध्ययन की पद्धति से परिष्कृत और पद्धतियाँ भी विकसित होंगी।

सन्दर्भ

1. Ananda Mitra (1993) Television and Popular Culture in India,
2. Mahabharat, New Delhi, Sage Publication.
3. Bhasin Kamla (1992) Education for Women's Empowerment
4. Centre for Advocacy & Research (2003) Contemporary Women in Television Fiction Deconstructing Role of Commerce and Tradition
5. Economic & Political Weekly Vol. XXXVII No. 17.
6. Maithreyi Krishnaraj (2001) How Gender Figures in Economic Theorising and Philosophy. Economic and Political Weekly Vol. XXXVI, No. 17.
7. Radhakrishnan, Chitra (2001) The Image of Women in India Television Women in Action.
8. Nussbaum, Marth C. (2000) Women and Human Development.
9. Someswar Bhowmik (2002) Politics of Film Censorship:Limits of Tolerance.
10. Someswar Bhowmik (2003) From Coercion to Power Relations Film Censorship in Post-Colonial India. Economic and Political Weekly Vol. XXXVII, No. 30.